जन्मशती वर्ष के अवसर पर

- Posted by on September 18, 2010 at 6:37am
-

जन्मशती वर्ष के अवसर पर

प्रभात कुमार रॉय

भारतीय उपमहाद्वीप में इस साल फैज़ अहमद फैज़ की जन्मशती का जश्न चल रहा है। पाकिस्तान की सरजमीं के इस शानदार शायर को संपूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप का शायर माना जाता है। फैज़ अहमद फैज़ की शायरी मंत्रमुग्ध करने वाली शायरी मानी जाती है। इसका अहम् कारण रहा कि फैज़ ने साहित्य और समाज की खातिर जीवनपर्यन्त कठोर तपस्या अंजाम दी। जिंदगी भर समाज के गरीब मजलूमों के लिए समर्पित रहने वाले फैज़ ने बेवजह शेर कहने की कोशिश कदाचित नहीं की। उनके कविता संग्रह नक्श ए फरयादी पढते हुए गालिब की एक उक्ति बरबस याद आ जाती है कि जब से मेरे सीने का नासूर बंद हो गया, तब से मैने शेर ओ शायरी करना छोड़ दिया। सीने का नासूर फिर चाहे मुहब्बत अथवा प्रेम भाव के रूप में विद्यमान रहे और चाहे वतन एवं मानवता के प्रेम के तौर पर कायम रहे। यह महान् भाव कविता के लिए ही नहीं वरन सभी ललित कलाओं के लिए एक अनिवार्य तत्व रहा है। अध्ययन और अभ्यास के बलबूते पर बात कहने का सलीका तो आ सकता है, किंतु उसे दमदार और महत्वपूर्ण बनाने के लिए कलाकार को अपने ही अंतस्थल में बहुत गहरे उतरना पड़ता है।

मौहम्मद इक़बाल ने फरमाया
अपने अंदर डूब कर पा जा सुराग ए जिंदगी तू अगर मेरा नहीं बनता न बन अपना तो बन

फैज़ अहमद फैज़ आधुनिक काल के उन बडे शायरों में शुमार रहे हैं, जिन्होने काव्य कला के नए अनोखे प्रयोग अंजाम दिए, किंतु उनकी बुनियाद सदैव ही पुरातन क्लासिक मान्याताओं पर रखी। इस मूल तथ्य को कदापि नहीं विस्मृत नहीं किया कि प्रत्येक नई चीज का जन्म पुरानी कोख से ही होता आया है।

उनकी बहुत मशहूर ग़ज़ल को ही देखें
मुझसे पहली सी मुहब्बत मेरी महबूब ना मांग़
और भी दुख हैं जमाने में मुहब्बत के सिवा
राहते और भी हैं वस्ल की राहत के सिवा अनगिनत सदियों तारीक़ बहीमाना तिलिस्म रेशम ओ अतलस ओ कमखाब में बुनवाए हुए
जा बजा बजा बिकते हुए कूच आ बाजार में जिस्म खाक़ में लिथड़े हुए खून में नहलाए हुए जिस्म निकले हुए अमराज के तन्नूरों से पीप बहती हुई गलते हुए नासूरों से
लौट जाती है उध्ार को भी नज़र क्या कीजे
अब भी दिलकश है तेरा हुस्न मगर क्या कीजे
फैज़ अहमद फैज़ सन् 1911 में अविभाजित हिदुस्तान के शहर सियालकोट (पंजाब) के एक मध्यवर्गीय परिवार में जन्मे थे। प्रारम्भिक शिक्षा दीक्षा स्कॉच मिशन हायरसैंकडरी स्कूल से हुई। इसके पश्चात गवर्नमेंट कालेज लाहौर से 1933 में इंग्लिश से एम ए किया और वहीं से बाद में अरबी भाषा में भी एम ए किया। सन् 1936 में वह भारत में प्रेमचंद, मौलवी अब्दुल हक़, सज्जाद जहीर और मुल्कराज आनंद द्वारा स्थापित प्रगतिशील लेखक संघ में बाकायदा शामिल हुए। युवा फ़ैज़ अहमद फैज़ ने प्रगतिशील लेखक संघ की तहारीक़ को साहिर लुधायानवी, किशन चंद्र, शैलेंद्र, राजेंद्रसिंह बेदी, जां निसार अख्तर, कैफी आज़मी, अली सरदार ज़ाफ़री, भीष्म

Reproduced by www.hobbyshobby.com with author's permission

साहनी, के ए अब्बास, डा रामविलास शर्मा, नीरज आदि अनेक मूर्धन्य कवियों शायरों और लेखकों के साथ मिलकर नई ऊचाइयों तक पंहुचाया।
पढाई लिखाई में बेहद मेधावी रहे फैज़ ने एम ए ओ कालेज अमृतसर में अध्यापन कार्य 1934 से 1940 तक किया। इसके पश्चात 1940 से 42 तक हैली कालेज लाहौर में अध्यापन किया। 1942 से 47 तक में फैंज़ अहमद फैज़ ने सेना मे बतौर कर्नल अपनी सेवाएं अंजाम दी। 1947 में फौज़ से अलग होकर पाकिस्तान टाइम्स और इमरोज़ अखबारों के एडीटर रहे। सन् 1951 में उनको पाकिस्तान सरकार ने रावलपिंडी कांसपेरिसी केस के तहत गिरफ्तार किया गया। उल्लेखनीय है कि इसी केस के तहत ही भारतीय नाट्य संघ (इप्टा) के लेजेन्डरी संस्थापक जनाब सज़्जाद जहीर उर्फ बन्ने मियां को भी गिरफ्तार किया गया। इसी मुकदमे के सिलसिले में फैज़ को 1955 तक जेल में ही रहना पड़ा। फैज़ की शायरी के अनेक संग्रह प्रकाशित हुए, इनमें नक्श-ए-फरयादी, दस्त-ए-सबा, जिंदानामा और दस्त ए तहे संग बहुत मक़बूल हुए।
एक बडी ही विचित्र किंतु प्रशंसनीय बात है कि प्राचीन और आधुनिक शायरों की महफिल में बाकायदा खपकर भी फैज़ की एकदम अलग शख्सियत कायम है। फैज ने काव्य-कला के बुनियादी नियमों में कोई संशोधन नहीं किया। उर्दू के प्रसिद्ध शायर असर लखनवी ने फैज़ के विषय में अपनी टिप्पणी में कहा कि फैज की शायरी तरक्की के दर्जे तय करती हुई, शिखर बिंदु तक पंहुची। कल्पना (तख़य्युल) ने कला के जौहर दिखाए और मासूम जज्बात को हसीन पैकर(आकार) बख़्शा।

क्यों मेरा दिल नाशद नहीं क्यों खमोश रहा करता हूं
छोड़ो मेरी राम कहानी मैं जैसा भी हूं अच्छा हूं क्यों न जहां का ग़म अपना ले बाद में सब तदबीरें सोचें बाद में सुख के सपने देखें सपनों की ताबीरें सोचें हमने माना जंग कड़ी है सर फूटेगें खून बहेगा खून में ग़म भी बह जाएगें हम न रहेगें ग़म न रहेगा

अपनी शायरी के अंदाज ए बयां की तरह ही व्यक्तिगत जिंदगी में भी कभी किसी ने उनको ऊचां बोलते हुए नहीं सुना। मुशायरों में भी फैज़ कुछ इस तरह से शेर पढ़ा करते थे कि होठों से जरा ऊंची आवाज निकल गई, तो न जाने कितने मोती चकनाचूर हो जाएगें।
वह फौज में रहे। कालेज में प्रोफेसरी की। रेडियो की नौकरी की, अख़बार के एडीटर रहे। पाकिस्तान हुकूमत ने हिंसात्मक षडयंत्र के इल्जाम में जेल में रखा, किंतु उनके नर्म दिल लहजे और शायराना अंदाज में कतई कहीं कोई अंतर नहीं आया। उनकी शख्सियत बयान करती है कि जीवन यापन की खातिर बहुत से पेशों से गुजरते हुए वह मूलत: एक इंकलाबी शायर ही रहे। फैज़ की आवाज़ का नरम लहजा और उसकी गहन गंभीरता वस्तुत: उनके बेहद कठोर मुश्किल जीवन और अपार अध्ययन का स्वाभाविक परिणाम समझा जाता है। दुनिया के मेहनतकश किसान मजदूरों और उनकी अंतिम विजय में उनका गहरा यकीन कायम रहा। भारत के विभाजन को उन्होने मन से कदाचित स्वीकरा नहीं। उनकी मशहूर नज़्म सुबह ओ आज़ादी इसकी गवाह रही है
ये दाग़ दाग़ उजाला ये श्ाब गुजीदा सहर
वो इंतजार था जिसका ये वो सहर तो नहीं
ये वो सहर तो नहीं जिसकी आरजू लेकर
चले थे यार कि मिल जाएगी कहीं ना कहीं
अभी गिरानी ए शब में कमी नहीं आई नजाते दीदा ओ दिल की घडी नहीं आई चले चलो कि वो मंजिल अभी नहीं आई
1960 के दशक में फैज़ को एक इंटरनेशनल शायर के तौर पर तस्लीम किया गया। अपने जीवन के आखिरी दौर तक फैज ने अपना यह मक़ाम बनाए रखा। यही कारण है कि दुनिया में चारो ओर बहता हुआ मानवता का लहू उनकी शायरी में छलकता नजर आता है।

पुकारता रहा बेआसरा यतीम लहू

Reproduced by www.hobbyshobby.com with author's permission

किसी के पास समाअत का वक्त था न दिमाग कहीं नहीं कहीं भी नहीं लहू का सुराग
न दस्त ओ नाखून ए कातिल न आस्तीं के निशां
इंसान और मानवता के बेहतरीन मुस्तक़बिल में उनका तर्कपूर्ण यक़ीन बेमिसाल रहा। उनके एक तराने ने तो न जाने कितने राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय संघर्षो को हौंसला दिया।

दरबार ए वतन में जब इक दिन सब जाने वाले जाएगें
कुछ अपनी सजा को पंहुचेगें कुछ अपनी ज़जा़ ले जाएगें
ऐ ख़ाक नशीनों उठ बैठो वो वक़्त करीब आ पंहुचा है जब ताज गिराए जाएगें जब तख़्त उछाले जाएगें ऐ जुल्म के मारों ब खोलो चुप रहने वालो चुप कब तक कुछ हश्र तो इनसे उठ्ठेगा कुछ दूर तो नाले जाएगें अब दूर गिरेगीं जंजीरे अब जिंदानों की खैर नहीं
जब दरिया झूम के उठ्ठगें तिनको से ना टाले जाएगें
कटते भी चलो बढते भी चलो बाजू भी बहुत है सर भी बहुत चलते भी चलो कि अब डेरे मंजिल पे ही डाले जाएगें

इस संक्षिप्त लेख के माध्यम से फैज़ की शख़्सियत और उनकी शायरी कुछ रौशनी डालने का प्रयास किया गया, अन्यथा ऐसे शायर पर जिसने कालजयी कविता के माध्यम से अपने युग के दुख दर्द को आत्मसात करके, उसे अपनी शख्सियत का हिस्सा बना लिया और फिर उन्हे बेहद मनमोहक अंजाद में बयां कर दिया। जिसकी शायरी की ताकत जनमानस से उसका गहरा संबंध रही। जिसने जेल की अंधेरी कोठरी में आशा, अभिलाषा और उत्साह के अमर तराने लिखे, उसकी दास्तान पर तो अनेक ग्रंथ लिखे जा सकते हैं। अपनी कठोर कैद में फैज ने एक नज्म़ लिखी जो कालजयी सिद्ध हुई, उसकी चर्चा के बिना यह लेख अधूरा रहेगा क्योंकि फैज़ की ये काव्यात्मक पंक्तिया उनके व्यक्तित्व और शायरी के अंदाज की एक शानदार झलक हैं
मेरा कहीं क़याम क्या मेरा कहीं मक़ाम क्या मेरा सफ़र है दर वतन मेरा वतन है दर सफ़र मता ए लौहे कलम छिन गई तो क्या ग़म है कि खून ए दिल में डूबो ली है अंगुलियां मैंने जुबां पे मोहर लगी तो क्या ग़म है हर एक हल्कद ए जंजीर में रख दी है जुबां मैंने
प्रभात कुमार रॉय

Reproduced by www.hobbyshobby.com with author's permission